Vol-1, Issue-2 73

झारखंड की जनजातीय लोककविता के प्रतिमान

प्रो. दिनेश्वर प्रसाद

भूतपूर्व विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग रांची विश्वविद्यालय, रांची

शोध सारांश:

जनजातीय लोक कविता के प्रतिमान आलेख लोककविता की आधुनिक छंदोबद्ध कविता से भिन्नता एवं उसकी मूलभूत विशेषताओं को रेखांकित करता हैं। लोककविता के मूल स्वर को पहचान कर उसके सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं को भी उद्घाटित करता है। लोककविता की विशेषताओं को रेखांकित करने के लिए विभिन्न प्रतिमानों- गीतबद्धता, काव्यानुभूति की सामूहिकता, सपाटबयानी-सरलता-आलंकारिता एवं आवृत्तिबद्धता के पहलुओं पर विचार करता हुआ यह आलेख कविता के मानदंडों को भी विश्लेषित करता एवं उन पर प्रश्न उठाता है।

बीज शब्द : झारखण्ड, लोक कविता, लोकगीत, प्रतिमान

झारखंड अर्थात छोटानागपुर- संथालपरगना की जनजातीय भाषाओं की लोक कविता से मेरा अभिप्राय इनके लोकगीत से है। मैंने जानबूझकर, सप्रयोजन लोक गीत के बदले "लोक कविता" का प्रयोग इसलिए किया है कि इन भाषाओं में गीत इनकी काव्याभिव्यक्ति का सम्पूर्ण माध्यम है, यानी यही इनकी कविता है, जबकि गैर जनजातीय भाषाओं में गीत काव्याभिव्यक्ति का एक प्रकार भर है।

गैर जनजातीय भाषाओं की लिखित परम्परा की कविता पर शताब्दियों से कार्य होते रहे हैं। हमारे देश में संस्कृत के आचार्यों ने इसमें उपलब्ध काव्य को आधार बनाकर एक बड़े समुन्नत समीक्षा शास्त्र(काव्य शास्त्र) का विकास किया है। किन्तु, आज भी इस धारणा को व्यापक मान्यता नहीं मिल पाई है कि लिखित कविता की तरह लोक कविता भी महत्वपूर्ण और विचार योग्य कविता है। फ़लतः लोक कविता के प्रतिमानों और सिद्धातों की खोज उस रूप में नहीं की गई है जिस रूप में लिखित और शिष्ट कविता के प्रतिमानों और सिद्धांतों की। वस्तुस्थिति यह है कि अबतक मानव विज्ञान, जाति विज्ञान, समाज शास्त्र, इतिहास आदि समाज विज्ञानों के सीमान्त या पूरक उपयोग की दृष्टि से भी न केवल जनजातीय, बल्कि गैर जनजातीय लोक कविता का भी अध्ययन होता रहा है।लिखित या शिष्ट परम्परा में मान्य कविता के अर्थ में मौलिक या लोककविता के कविताशास्त्रीय अनुशीलन का कार्य बहुत कम किया गया है। यदि झारखंड ही नहीं, भारत की समस्त जनजातीय लोककविता के समालोचनात्मक अध्ययन पर विचार करें तो मेरी जानकारी में फ़ादर हाफ़मैन और एमेनो के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति ने इस विषय पर कोई बुनियादी महत्व का कार्य नहीं किया है।

फ़ादर हाफ़मैन(१८५७-१९२८) ने एशियाटिक सोसायटी आव बेंगाल की शोध पत्रिका में १९०७ ईसवी में "मुंडारी पोयेट्री", म्यूजिक एंड डांस" शीर्षक से एक निबंध माला प्रारम्भ की थी,जिसके प्रथम भाग " मुन्डारी पोयेट्री"(मुंडारी किवता) से सम्बन्धित सामग्री इसके पहले निबंध में मुद्रित है। यह निबंध लगभग साठ पृष्ठों का है। इस एक ही निबंध में उन्होंने मुंडारी लोककिवता के विषय में जो कुछ लिखा है, वह आज भी अद्वितीय महत्व का है।यह मुण्डारी जनजातीय काव्य के निरूपण का पहला गम्भीर प्रयत्न है जिसकी बराबरी का कोई भी कार्य आज भी नहीं हुआ है। हाफ़मैन के मुण्डारी विश्वकोश(एनसाइक्लोपीडियामुण्डारिका)के चौथे खण्ड के "दुरंग" और तेरहवें खण्ड के "सुसुन' शीर्षक निबन्धों में भी इस विषय की कुछ नई सामग्री मिलती है। इस विश्वकोश में "पोईटिकवर्ड्स"(काव्यशब्द) अभिप्राय के अंतर्गत ऐसे सैकड़ों मुण्डारी शब्दों का उल्लेख और विवरण मिलता है, जिनका प्रयोग केवल गीतों में होता है, जो आज की मुण्डारी में प्रचलित नहीं हैं।फ़िर भी इतिहास और महत्व के विचार से एशियाटिक सोसायटी पत्रिका में प्रकाशित मुण्डारी कविता सम्बन्धी दीर्घ निबन्ध सर्वाधिक उल्लेख्य और विचारयोग्य है। इस निबन्ध में मुण्डारी की लोककिवता के बुनियादी अभिलक्षणों का सुस्पष्ट निर्देश और आधार मिलता है।

पूर्वोत्तर प्रभा वर्ष-1, अंक-2 जुलाई-दिसंबर 2021

यह कहना शायद गलत नहीं है कि आज तक इससे तुलनीय कोई कार्य किसी भी भारतीय जनजातीय लोक कविता के प्रसंग में नहीं हुआ है तथा इसकी उपयोगिता भारतीय कविता मात्र के अध्येताओं के लिए है। हॉफ़मैन प्रथम व्यक्ति हैं, जो मुण्डारी लोककविता की जाँच "आर्य" अर्थात ग्रीक - रोमन – गॉथिक काव्य की कसौटियों पर नहीं, बल्कि स्वयं इसमें मौजूद कसौटियों के आधार पर करने पर बल देते हैं।

भारत की जनजातीय लोक कविता के प्रतिमानों की खोज का दूसरा गम्भीर प्रयत्न एम. बी. एमेनो का है। १९५५-५६ ईसवी में कैलीफ़ोर्निया विश्वविद्यालय में दी गई उनकी व्याख्यानमाला "ओरल पोयेट्स ऑव साउथ इंडिया"- दी टोडाज(दक्षिण भारत के मौखिक कवि- टोडा जनजाति) है। इसमें टोडा जनजाति की लोक कविता कि भाषिक संरचना का बड़ा उपयोगी विश्लेषण हुआ है। ऐमेनो- जो मानव वैज्ञानिक और वैदिक विद्वान हैं, इस लम्बे निबंध में जिस रूप में टोडा लोक कविता की भाषिक इकाइयों का विभाजन करने और उन्की आवृत्ति तथा बारम्बारता के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए वैदिक कविता की भाषिक इकाइयों की आवृत्ति तथा बारम्बारता से उनकी तुलना करते हैं, वह झारखण्ड की जनजातीय लोककविता के अभिलक्षण की समझ की दृष्टि से भी उपयोगी है।

हॉफ़मैन और ऎमेनो के सैद्धांतिक और व्यावहारिक कार्यों की उपयोगिता असंदिग्ध है, किन्तु झारखण्ड की जनजातीय लोककविता का स्वरूप निरूपण सभी जनजातीय भाषाओं में उपलब्ध लोक कविता सम्बन्धी सामग्री के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर ही सम्भव है। संयोग से भारत की बहुत- सी जनजातियों की तुलना में, यहाँ की जनजातियों के विषय में कहीं अधिक कार्य हुआ है, और पिछले छह – सात दशकों में मुण्डा, हो, खड़िया और कुड़ुख लोकगीतों के कई छोटे- बड़े संग्रह छपे हैं। हाल के वर्षों में इन पर अच्छा शोध कार्य हुआ है, जिनमें जानुम सिंह तोय, कैथराइन रानी होरो, और इग्नाशिया कुल्लू(टोप्नो) के क्रमशः हो, मुण्डारी और खड़िया लोकगीत – सम्बन्धी कार्यों का उल्लेख किया जा सकता है।

अभिप्राय यह कि आज यहाँ की जनजातीय लोककविता के तुलनात्मक अध्ययन की आधार सामग्री का अभाव नहीं है। फ़िर भी, इसमें संदेह नहीं कि उपर्युक्त सभी निबंध, संग्रह और शोधग्रन्थ हमारे विषय के विचार से आधार-सामग्री के ही काम आ सकते हैं। हमें एक बड़ी सीमा तक स्वतंत्र रूप में इसके निरुपण का प्रयत्न करना होगा, क्योंकि हमारा प्रयोजन झारखण्ड की लोककविता में सन्निहित आदर्शों या प्रतिमानों का निर्धारण करना ही नहीं, बल्कि उनके अन्त: सम्बंधों के निरूपण द्वारा एक ऐसा समीक्षात्मक मानचित्र भी बनाया है, जो शिष्ट या लिखित कविता के मानचित्र से इसकी भिन्ना और विशिष्टता की समझ पैदा करने में सहायक हो। मेरे विचार से यहाँ की जनजातीय लोककविता के बुनियादी प्रतिमान इस प्रकार हैं:

गीतबद्धता

यहाँ की जनजातीय कविता के कविता होने की प्रमुख कसौटी यह है कि वह गीत हो। केवल गेय होना इसकी कसौटी नहीं है, क्योंकि कोई भी ऐसी कविता जो छंदोबद्ध होती है, गेय होती है या हो सकती है। पिछली सदी तक विश्व भर की लिखित कविता सामान्यत: छंदोबद्ध कविता थी। यद्यपि वाल्ट व्हिट्मैन ने मुक्त छंद का प्रवर्तन पिछली सदी में ही किया था, किन्तु यह कविता की रचना-पद्धति का अंग वर्तमान सदी में ही बन सका है। मुक्त छंद की कविता या मात्र छंदोबद्ध कविता यहाँ की जनजातीय लोककविता नहीं हो सकती।

जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है, लिखित काव्य साहित्य में गीत उसकी विभिन्न रचना पद्धतियों में मात्र एक पद्धति है, सम्पूर्ण काव्य पद्धति नहीं। इसके विपरीत, यहाँ की जनजातीय लोककविता का प्रथम और अंतिम , अर्थात एकमात्र लक्ष्य गीत होना है। कारण यह कि यहाँ गीत पाठ या वाचन का विषय न होकर गायन का विषय है। यहाँ सामान्यतया ताल , नृत्य और गीत एक सम्मिलित इकाई हैं और गीत का सुर या ध्वनि-विधान माँदर या नगाड़े के बोलों तथा नृत्य की पारियों और लय का प्रभावइसके आकार पर पड़ता है- यह लिखित कविता की तुलना में इसके आकार को परिमित कर देता है। सामान्यत: इसका विस्तार चार से लेकर दस – बारह पंक्तियों का होता है, चौदह या सोलह पंक्तियों के गीतों की संख्या बहुत कम है। आकारगत लघुता के प्रतिमान के केवल दो ही अपवाद हैं-मुण्डारी का सोसोबोंगा और संताली का जाहेर गीत। जहाँ जाहेर गीत गेय है, वहाँ सोसोबोंगा का, जो एक लम्बा आनुष्ठानिक कथा काव्य है, सांगीतिक वाचन होता है।

विभिन्न मौसमी और अवसरोधित रागों में बद्ध होने के कारण मुण्डारी, संताली, कुडुख आदि लोकगीतों के अनेकानेक भेद हो जाते हैं, जैसे जदुर,मागे, जिप, करम, डमकच, बाहा, बूमर, रिंजा, भिनसार आदि। किन्तु यहाँ यह उल्लेख आवश्यक है कि कोई भी गीत किसी भी राग में गाया जा सकता है और उसका उपयोग किसी भी नृत्य के लिए किया जा सकता है,इसलिए यदि कोई गीत "जदुर गीत" कहा जाता है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि इसकी राग से कोई विशेष अनुरूपता है, बल्कि यह प्राय: या वस्तुत: जदुर गीत के रूप में ही गाया जाता है।

काव्यानुभूति की सामूहिकता

यहाँ का जनजातीय लोक किव अपनी रचनाओं में जिन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करता है वे अनुभूतियाँ उसके पूरे समूह या समाज की होती हैं। रचना में उसके व्यक्तित्व की पृथक पहचान सम्भव नहीं है। इसका कारण यह नहीं है कि जनजातीय काव्य रचना मूलत: किसी व्यक्ति की रचना नहीं

Vol-1, Issue-2 75

है, बल्कि जब यह रचनाकार के कंठ से लोक कंठ तक पहुँचती है तो उस पर से उसके हस्ताक्षर मिट जाते हैं- उसका रूप प्रभावित और परिवर्तित होने लगता है और वह बदल कर, संशोधित हो कर और जोड घटाकर योगफ़ल बनकर पूरे समूह की कृति हो जाती है। वस्तुत: जनजातीय लोक कवि जो कुछ कहता है, उसे सिर्फ़ वही कह सकता था- बात यह नहीं होती है, बल्कि वह जो कुछ कहता है और जिस प्रकार कहता है, वह उसके समाज का कोई भी दूसरा सम्वेदनशील व्यक्ति कह सकता था और उसी रूप में कह सकता था। उसका चित्त लोक चित्त होता है। वह अपनी रचनाओं के लिए अपने समाज के विभिन्न उत्सवों, त्योहारों , संस्कारों और जीवनयापन करने के कार्यों को विषय बनाता है। वह अपने समाज के सुख- दुख, हर्ष- विषाद, मूल्य- बोध और जीवन दर्शन को स्वर देता है। उसकी रचनाओं के माध्यम से उसके समाज के पूरे जीवन चक्र को जाना जा सकता है और यह जानकारी प्राप्त की जा सकती है कि विभिन्न विषयों के सम्बंध में वह क्या सोचता और अनुभव करता है। फ्रांज बोआज की एक उक्ति को थोडा बदल कर प्रस्तुत करें तो यह कहा जा सकता है कि जनजातीय कविता जनजाति की आत्मकथा होती है।

काव्यानुभूति की सामूहिकता से यहाँ की जनजातीय कविता की लयात्मकता का बड़ा घनिष्ठ सम्बंध है। क्रिस्टोफ़र कार्ड्वेल ने "भ्रान्ति और यथार्थ"(इल्यूजन एंड रियेलिटी) में आज की कविता में छंद के बढ़ते हुए अंत और मुक्तछंद की बढ़ती हुई लोकप्रियता पर विचार करते हुए कहा है कि यह हतोन्मुखी पूँजीवादी व्यवस्था में व्यक्ति और समाज के बढ़ते हुए सम्बंध विच्छेद का प्रतिफ़ल है। जिस समाज में व्यक्ति और समुदाय का सामंजस्य रहता है उस समाज की कविता छंदबद्ध होती है। अभिप्राय यह है कि जीवन की लय ही कविता की लय हुआ करती है। इस विचार- सूत्र को तार्किक परिणति तक ले जाकर विचार किया जाए, तो यह कहा जा सकता है कि जहाँ समाज और व्यक्ति के बीच अपेक्षाकृत पूर्ण सामंस्य होता है वहाँ कविता केवल गीत होती है और वहाँ सामंस्य घटने के बावजूद उनका संतुलन बना रहता है, वहाँ कविता कभी गीत होती है और कभी केवल छंद। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि यहाँ की जनजातीय लोक कविता की गीतबद्धता का अनुभूति की सामूहिकता से बडा प्रकृत सम्बंध है।

सपाटबयानी- सह- सरल आलंकारिता

यहाँ की लोक कविता पूरे समुदाय की है, यह न केवल सामूहिक या सामुदायिक अनुभूति की है,वरन पूरे समुदाय तक प्रेषित होने के प्रयोजन से रची गई है, इसलिये यह प्रत्यक्ष भावानिवेदन और सपाटबयानी की कविता है। भारतीय काव्यशास्त्र में किसी बात को सीधे- सीधे अनअलंकृत रूप में कहना "स्वभावोक्ति" कहा गया है। स्वभावोक्ति के प्रसंग में विभिन्न काव्य सम्प्रदायों की धारणा एक जैसी नहीं है।

अलंकार शास्त्र में स्वभावोक्ति एक प्रकार का अलंकार है। अलंकार कथन की शैली या कहने का ढंग (वाग्विक) है। इसलिए स्वभावोक्ति, जो एक प्रकार की उक्ति या कथन है, अलंकार है। कविता में सबकुछ एक ही ढंग से नहीं कहा जाता। बहुत सी स्थितियों में बिना तुलना और विरोध के, बिना गोपन और अतिरंजना के, जो वस्तू जैसी है, उसे उसी रूप में निवेदित करने की आवश्यकता होती है। इसलिए स्वभावोक्ति को काव्योक्ति के दायरे में बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। किंतु जैसा कि अलंकारशास्त्रियों के काव्यविवेचन से स्पष्ट है, यह काव्योक्ति का प्रधान रूप न होकर उसके अनेकानेक रूपों में से एक और वह भी गौण-रूप है। काव्यशास्त्र के वक्रोक्ति सम्प्रदाय ने तो इसे काव्य ही नहीं माना है। उसके अनुसार उक्ति के दो भेद हैं- स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति। कविता वक्रोक्ति है- उक्ति या कथन का वक्र (सामान्य से भिन्न) रूप है अत: स्वभावोक्ति काव्य नहीं हो सकती। किंत् आज हिंदी में जो कविता लिखी जा रही है, वह स्वभावोक्ति या सपाटबयानी को ही सबसे प्राभाविक और सच्ची कविता मान कर लिखी जा रही है। उसके अनुसार वक्रता और अलंकार कविता की बैसाखियाँ हैं। जो कवि इनका सहारा लिए बिना अपनी बात सीधे- सीधे कह सकता है, वही सच्चा और समर्थ कवि है। आज सपाटबयानी को न केवल हिंदी में, बल्कि अन्य भाषाओं में भी, काव्य लेखन के एक बड़े आदर्श के रूप में, महत्व दिया जा रहा है। किंतु प्रश्न है: जनजातीय कविता की तरह आज की लिखित परम्परा की कविता में समान रूप में सपाटबयानी को महत्व दिए जाने का कारण क्या है? मेरी समझ में जब कवि श्रोताओं या पाठकों के एक बड़े समदाय से जुड़ना और उसे एक साथ सम्बोधित करना चाहता है, तब उसकी भाषा सीधी अभिव्यक्ति या सपाटबयानी की भाषा हो जाती है। उसकी स्थिति उस रचनाकार से भिन्न होती है, जिसका कवित्व प्रवीणों और पंडितों के आस्वाद के लिए होता है: "पंडित आर प्रवीनन को जोई चित्त हरै सो कवित्व कहावै।" यहाँ की जनजातीय लोककविता का श्रोता पंडित या प्रवीण न होकर उसका पूरा समाज है, इसलिए उसकी चिन्ता प्रत्यक्ष और तत्काल सम्प्रेषण की है। उसकी सपाटबयानी उसके सामाजिक और भाषिक दबावों की एकत्र और स्वाभाविक परिणति है।

सपाटबयानी के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं।
1१। संगकिय ल: ममित ना रे कोई
तेरे सिंगअ: मु:धि मुन्देरा ओखूबामि। (खड़िया)
(ओ मेरे ।मित्र। अगर तुमने मुझको पसंद किया तो अपनी उँगली
की अँगूठी दे दो(उसका) कान का मुन्देरा बनवाऊँगी।)

।२। कोटा कुलीपिड़ि दुमङ तरिडो जिगे लिटिबालिटिबा रंगो डिगिरि नगड़ा सरिडो कुड़म दोपोल दोपोला। (मुण्डारी) (कोटा और कुलीपीड़ी में दुमंग बज रहा है मेरा जी छटपटा रहा है रंगो और डिगिरि में नगड़ा बज रहा है मेरी छाती धक-धक कर रही है।)

किंतु यहाँ की जनजातीय कविता के प्रसंग में सपाटबयानी को मात्र तथ्यपरक और अभिधान्वक अभिव्यक्ति तक सीमित करना उचित नहीं होगा। यदि सपाटबयानी का अर्थ सीधी, सुनते ही समझ में आ जाने वाली अभिव्यक्ति है, तो इसमें सरल और अनायास ग्राह्य आलंकारिता भी सम्मिलित है। इसलिए यहाँ अभिमिश्रित या शुद्ध सपाटबयानी के उदाहरणों से कहीं अधिक संख्या उन उदाहरणों की है, जो सरल आलंकारिता, समानान्तरता और एक ही अर्थ को सम्प्रेषित करने वाली वैकल्पिक वाक्य- योजना का उपयोग करते हैं। यह बात कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट हो जाती है:

1१। राजा गोरोब दो अलोरेम गोरोब दिकू पलइ दो अलोरेम पुलइन । (मुण्डारी) राजा की तरह तुम गर्व न करो प्रिय। दिकु की तरह तुम स्वांग न करो प्रिय। ।२। चेतन पुकुरी सलुक़ङ बाड़ा लतर पुकुरि सलुक़ङ बाड़ा (हो) ऊपर पोखर में कमल खिला है नीचे पोखर में कमल खिला है

ये उदाहरण यह संकेत करते हैं कि जनजातीय किवता अपनी प्रत्यक्ष और अवरोधरहित सम्प्रेषणीयता के दायरे में भी पर्याप्त नमनीय और वैविध्यपूर्ण है , इसलिए इसकी एकरूपता या अतिसरलता की धारणा वस्तुस्थिति से भिन्न है।

आवृत्तिबहुलता

न केंवल झारखंड की लोककविता, वरन लोक और मौखिक कविता मात्र की एक विशेषता आवृत्ति बहुलता है। यह बात प्राचीनकाल से लेकर आज तक की मौखिक कविता के आधार पर स्पष्ट की जा सकती है।

वैदिक कविता को "श्रुति" कहने की परम्परा ही यह बतलाती है कि यह कविता सुनकर याद करने और रखने की वस्तु थी। अत: इसमें पारम्परिक काव्य इकाइयों की बारम्बारता प्राप्त होती है। सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक ब्लूमफ़ील्ड ने ऋग्वेदिक आवृत्तियाँ (ऋग्वेद रेपिटिशन्स) नामक पुस्तक के दो खण्डों में इस विषय की समस्त सामग्री प्रस्तुत की है और गणना के आधार पर यह बताया है कि ऋग्वेद की एक हजार ऋचाओं की कुल पंक्तियों का पाँचवा अर्थात बीस प्रतिशत भाग आवृत्तिमूलक इकाइयों का है। ब्लूम फ़ील्ड का ऋग्वेद सम्बन्धी यह निष्कर्ष अनुपात-भेद से समस्त मौखिक कविता पर लागू है। माँरिस बोअरा की पुस्तक 'हिरोइक पोयेटी" इसके एक मुल्यवान साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है, जिसमें होमर के महाकाव्यों, प्राचीन रोमांस, दक्षिणी स्लाव, उजबेक आदि पुरातन और अधुनातन भाषाओं के लोककाव्यों के अध्ययन द्वारा इसे एक बड़े फ़लक पर सिद्ध किया गया है।

झारखंड की जनजातीय लोक कविता का कोई भी विश्लेषण उपर्युक्त स्थापना की पृष्टि कर सकता है।एक विशेष आख्यान तक ही और वह भी छोटे आकार की रचना के गाए जाते रहने और एक ही पंक्ति या पंक्तियों के, बारी- बारी से, गायक दल के सदस्यों द्वारा ध्वनि- प्रतिध्वनि रूप में बरते जाने के कारण आवृत्ति इसकी प्रकार्यात्मक और शिल्पगत अनिवार्यता हो जाती है। रचना की इकाइयों की आवृति उसकी भाव इकाइयों की भी आवृत्ति है, जो उसके गायकों और श्रोताओं, दोनों के मन में समान रूप से अर्थ और सम्वेदना का एक समग्र बिम्ब निर्मित करती है। यह कार्य उस कविता के लिए आवश्यक है, जो मुद्रित रूप में पढ़ने की वस्तु न हो, सिर्फ़ सुनकर और दुहराकर, ध्वनि, लय और अर्थ की समग्रता में ग्रहण करने की वस्तु है। इस प्रकार सम्प्रेषण की जिस प्रत्यक्षता का पहले उल्लेख किया गया है, आवृत्ति उसका ही स्वाभाविक अंग है।

काव्य इकाइयों की आवृत्ति का यहाँ कोई एक ही रूप नहीं है। प्रचलित गीतों में इसके दो सामान्य भेद मिलते हैं- अविकल आवृत्ति और शब्दान्तर (या समान्तर) आवृत्ति। काव्य इकाई की यथावत आवृत्ति अविकल आवृत्ति है और शब्द बदल कर की जाने वाली आवृत्ति, शब्दान्तर आवृत्ति। दोनों का अधिकतर गीतों में प्राय: एक साथ प्रयोग मिलता है- जैसे मुण्डारी और हो क्षेत्रों में समान रूप से लोकप्रिय इस गीत में-

ओते रेमा लिपि तिरमा रेमा काजि तेगे लिपिञ अयुम मेंअ ओते रेमा लिपि तिरमा रेमा। नकणा तेगे लिपिञ अतेन मेंअ कजि तेगे लिपिञ अतेन मेअ गति लेका लिपिञ अयुम मेअ संगाइञ लेका लिपिञ अतेम मेअ॥

> हे लिपि! तुम धरती पर हो या आकाश में? मैं तुम्हारी बोली सुनता हूँ। हे लिपि! तुम धरती पर हो या आकाश में? मैं तुम्हारी वाणी पहचानता हूँ। हे लिपि! मैं तुम्हारी बोली सुनता हूँ, मित्र-जैसी(बोली) हे लिपि! सुनता हूँ। हे लिपि! मैं तुम्हारी वाणी सुनता हूँ, साथी- जैसी (बोली) हे लिपि! सुनता हूँ।

जनजातीय लोक कविता के विश्लेषण के लिए हमें इन सभी प्रतिमानों को ध्यान में रखना होगा अन्यथा कोई भी विश्लेषण अपूर्ण और भ्रामक सिद्ध हो सकता।